गुरु एक या अनेक : नयदृष्टि

तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी म.सा.

तीर्थंकर प्रभु भी धर्म गुरु हैं तथा सुसाधु भी गुरु हैं। नयदृष्टि से दोनों गुरु हैं, जिन्होंने तीर्थंकरों से सीधा ज्ञान प्राप्त किया, उनके लिए तीर्थंकर धर्माचार्य हैं तथा जिन्होंने सुसाधुओं से ज्ञान प्राप्त किया उनके लिए सुसाधु गुरु हैं, किन्तु क्रियात्मक दृष्टि से एक ही गुरु से ज्ञान प्राप्त करने के कारण व्यवहार नय से गुरु एक होता है। इसे तत्त्वचिन्तक मुनि श्री ने प्रवचन में विशेषावश्यकभाष्य के आधार से भी स्पष्ट किया है। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि एक गुरु के होने पर भी सेवा सभी साधुओं की की जा सकती है। -सम्पादक

स्वच्छ हृदय में, निर्मल अन्तःकरण में, समाधियुक्त चित्त में, धर्म के बीज वपन कर शुक्लध्यान रूपी फसल को लहलहा कर मुक्ति रूपी फल प्राप्त करने वाले अनन्त-अनन्त उपकारी वीतराग भगवन्त और वीतराग भगवन्तों द्वारा प्ररूपित इस वीतराग वाणी के रहस्य को हृदयंगम कर उस परम मोक्ष के फल को प्राप्त करने के लिए धर्म के मूल विनय को जीवन में आत्मसात् करते हुए अपूर्व और अद्वितीय गुरु-भक्ति के द्वारा इस पद पर पहुँच कर संघ का रक्षण करने वाले आचार्य भगवन्त के चरणों में वन्दन के पश्चात्-

एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो अ से मुक्खो।
जेण किर्त्तिं सुअं सिग्घं, नीसेसं चाभिगच्छइ॥

दशवैकालिक सूत्र के अध्ययन नौ के उद्देशक दूसरे की गाथा एक व दो में पहले वृक्ष की बात कही गई और फिर वृक्ष की उपमा धर्म पर घटाई गयी। धर्मरूपी वृक्ष का मूल विनय कहकर फल के रूप में मोक्ष का विवेचन किया गया। वह धर्म हृदय की सरलता में उपजता है। सरल की सिद्धि होती है। शुद्ध आत्मा में धर्म ठहरता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया-

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ। (अ. 3, गाथा-12)

सरलता कहाँ होगी? उत्तराध्ययन सूत्र के 29 वें अध्ययन में पृच्छा की गई। वहाँ कहा गया कि अपने दोषों को देखने से सरलता आती है। अभी-अभी मुनिराज (श्री योगेशमुनि जी महाराज) कह रहे थे, वही बात फिर से दोहराई जा रही है- **''भूल करने के लिए कोई समय अच्छा नहीं है और की हुई भूल को सुधारने के लिए कोई समय खराब नहीं है।''**

साधना किसका नाम है? जानी हुई बुराई करे नहीं, की हुई बुराई दोहराये नहीं- 'जाणियव्वा न समायरियव्वा' और तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।''

कल बात चल रही थी, 'गुरु एक : सेवा अनेक।' हमारे आगम में ऐसा कोई सूत्र नहीं ऐसा कोई

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ नहीं जो नय के बिना हो।

नत्थि नएहिं विहूणं, सुत्तं अत्थो य जिणमये किंचि।
आसज्ज उ सोयारं नय-नय-विसारओ बूया।।

विशेषावश्यकभाष्य के अनुसार जैन मत में नय के अभाव में कोई कथन नहीं है। एक अपेक्षा से कह दिया कि जगगुरु (नन्दीसूत्र, गाथा 1) अर्थात् सभी भगवान जगत के गुरु हैं फिर (नन्दीसूत्र,गाथा 2) 'गुरु लोगाणं' से भगवान महावीर को गुरु बताया एवं फिर आगे चलकर गुरु को तीन भदों में विभक्त कर दिया- आचार्य, उपाध्याय और साधु गुरु हैं। हम गुरु की बात को लेकर थोड़ा आगे बढ़ने का प्रयास करें।

जो समस्त लोक के गुरु हैं वे अरिहन्त भगवन्त हैं। अरिहन्त भगवान भले ही नमस्कार मन्त्र के अन्तर्गत देव पद में सम्मिलित किए गये हैं, पर उनके पास जिन्होंने अज्ञान का नाश किया, सम्यक्त्व बोध को प्राप्त किया उनकी दृष्टि में अरिहन्त ही गुरु हैं। आगम में गौतमादि शिष्य तीर्थंकर के लिए यही बोलते हैं कि वे हमारे धर्माचार्य-धर्मोपदशेक-धर्मगुरु यहाँ पधारे हुए हैं। आनन्द श्रावक हो या कामदेव या अन्य श्रावक की बात करें उन्होंने धर्मोपदेशक-धर्माचार्य-धर्मगुरु का सम्बोधन किया। भगवान महावीर के कई श्रावक थे। आनन्द, कामदेव आदि दश श्रावकों में महाशतक का भी नाम आता है। उनके धर्माचार्य गुरु तीर्थंकर महावीर थे। वह धर्मनिष्ठ था, किन्तु परिवार में विषम परिस्थिति थी। महाशतक के तेरह पत्नियाँ थीं उनमें रेवती ने छः को शस्त्र प्रयोग से और छः को जहर देकर मरवा दिया। रेवती सबसे ज्यादा धनाढ्य थी। राजगृह में अमारि घोषणा थी, हिंसा पर प्रतिबंध था। वह प्रतिदिन पीहर से दो गायों के बछड़ों को कटवा के मंगवाती। उनका मांस खाती और पांचों प्रकार की शराब पीती। महाशतक श्रावक पर्याय में संथारा करके बैठे हुए हैं, रेवती उनके सामने नाचती है, भोगों की याचना करती है, भोग भोगने के लिए कहती है। आनन्द-कामदेव को तीन दिशाओं में पाँच-पाँच सौ योजन का अवधि ज्ञान हुआ तो महाशतक हजार योजन तक देख सके, दुगुना अवधि ज्ञान हुआ। विपरीतता में साधक को दुगुना फायदा है।

महाशतक ने रेवती का क्या होगा, उपयोग लगाया कि वह सात दिन बाद पहली नरक में जाने वाली है। रेवती गाय का मांस खा रही है, शराब पी रही है और वह महाशतक को भोगों को भोगने हेतु आमन्त्रित कह रही है। महाशतक संथारे की साधना में हैं फिर भी रेवती के अपराध पर क्षोभ आ गया। महाशतक ने अवधिज्ञान में देखा कि यह मर कर नरक में जाने वाली है। महाशतक ने कह दिया- तू क्या कर रही है? तू सातवें दिन मरकर पहली नरक में जाने वाली है। वीतराग भगवन्त कहते हैं- क्रोध के वश में बोला गया सत्य भी असत्य है। भगवान कहते हैं- ऐसा बोलना नहीं कल्पता। भगवान ने इन्द्रभूति गौतम को बुलाकर कहा- श्रावक महाशतक चूक गया। भगवान वीतरागी हैं, केवली हैं, केवलज्ञान में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सब कुछ जान रहे हैं, देख रहे हैं। भगवान का कहना आत्मीयता का सूचक है। क्योंकि महाशतक भगवान महावीर को गुरु मानता है।

गुरु की सेवा करना अच्छी बात है, क्योंकि गुरु सब पापों से निवृत्त हैं। हमने पढ़ा है, सुना है दुनियाँ का सबसे बड़ा वीर, सबसे बड़ा धीर, सबसे बड़ा गंभीर, सबसे बड़ा दक्ष, सबसे बड़ा तत्त्वज्ञ वही हो सकता है जो अपने साथ बुराई नहीं करे। ये (आचार्य श्री हीराचन्द्र जी महाराज की ओर संकेत कर) सबसे बड़े धीर-वीर-गंभीर, दक्ष और तत्त्वज्ञ आपके सामने बैठे हैं।

अरिहन्त-सिद्ध बुराई की उत्पत्ति से रहित हैं। वे निर्दोष परमात्मा हैं। आचार्य-उपाध्याय-साधु पूर्णतः बुराई से रहित नहीं हैं। वे निर्दोषता-प्राप्ति के लिए सजग महात्मा हैं। जो अठारह दोष रहित हैं वे हमारे देव हैं। देव में अरिहन्त भी आयेंगे, सिद्ध भी आयेंगे। जो अठारह दोष रहित होने की साधना कर रहे हैं, साधना-मार्ग में आगे बढ़ने के लिए सजग हैं वे गुरु हैं। कर्मोदय के प्रभाव में एक्सीडेंट हो सकता है, रोग आ सकता है, अन्य बाधा आ सकती है। किन्तु वे शुद्धि करके वापस साधना-मार्ग में बढ़ सकते हैं। रोगग्रस्त होने पर डॉक्टर की सेवा ली हो तो प्रायश्चित्त आता है। किसी के पांव में कांटा लग गया, कांटा निकलवाने में श्रावक का सहयोग लिया तो प्रायश्चित्त आता है।

सारे साधु अपेक्षा विशेष से गुरु हैं। उनमें पंच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति एवं दश यंति धर्मों का पालन हो रहा है, अतः वे सभी गुरु के रूप में पूज्य हैं। उसी दृष्टि से 'जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।' वाक्य सार्थक है कि जीवनपर्यन्त सुसाधु मेरे गुरु हैं। महाविदेह के हजार करोड़ साधु, शेष 4 भरत, 5 ऐरवत के साधु परोक्ष रूप से उपकारी हैं, उनकी वंदना स्तुति मात्र हो सकती है। भरत क्षेत्र के सभी साधु वंदनीय नमस्करणीय हैं, उनमें जिनका प्रत्यक्ष सान्निध्य मिले,उनकी सेवा शुश्रूषा, उनको भिक्षा बहराना, व्याख्यान सुनना, ज्ञान सीखना आदि सम्भव होने से वे उपकारी गुरुदेव हो सकते हैं, पर क्रियात्मक रूप से आगे बढ़ने के लिए एक ही गुरु को लेकर चलना पड़ेगा। आज विशेषावश्यकभाष्य पढ़ते समय बहुत सुन्दर विवेचन आया। 'करेमि भंते! सामाइयं' यानी हे भगवन्! मैं सामायिक करता हूँ। गुरु सामने हों, फिर सम्बोधन में 'भंते' शब्द का प्रयोग किया गया तो ठीक है, पर जब सामने गुरु नहीं हैं तो फिर यह 'भंते' शब्द निरर्थक है, ऐसी जिज्ञासा वहाँ की गई।

मुनिराजों के सहयोग से विशेषावश्यकभाष्य पढ़ते समय समाधान भी मिला। गुरु के गुण में ज्ञान का उपयोग रखते हुए शिष्य जब 'भंते' बोलता है तो परोक्ष में स्थित गुरु के गुण में उपयोग लगाता है। उस समय भाव से गुरु को, आचार्य को भंते बोलते-बोलते रोम-रोम में आचार्य या गुरु समाहित होता है। ध्यान में लीन हों तो आचार्य-गुरु अन्तर में आ जाय! वह धर्माचार्य-धर्मगुरु एक ही हो सकता है। आप सामायिक की प्रतिज्ञा करते समय 'करेमि भंते' बोलते हैं, उस समय शिष्य का उपयोग पूरी तरह एक गुरु में लगा हुआ रहेगा। शिष्य के भाव में गुरु के गुण समाये हुए हैं। गुरु के गुण में जिसका ज्ञान

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उपयोग लगा हो वह गुरु एक ही हो सकता है। सामायिक करते समय उसे एक ही गुरु का चिन्तन आयेगा। अपेक्षा से 27 गुणों पर भी उपयोग लग सकता है, पर वहाँ कहा गया कि गुरु के प्रति समर्पण के भाव के साथ अपनी सारी वृत्ति उनकी आज्ञा के पारतन्त्र्यपूर्वक करने पर ही अपने अहंकार से छुटकारा पाकर कोई सच्चा साधक बन सकता है। आवश्यकसूत्र में बड़ी संलेखना में भी आता ही है- ''अपने धर्माचार्य को वंदना करके'' वहाँ- जीवन का अंतिम प्रत्याख्यान करते समय भी विशिष्ट उपकारी गुरु को ही वंदन हेतु कहा गया, शेष साधु-साध्वियों से क्षमायाचना का उल्लेख किया गया। औपपातिकसूत्र में सिद्ध परमात्मा अरिहंत भगवंत, श्रमण भगवंत महावीर स्वामी के पश्चात् अम्बड़ जी के 700 शिष्यों ने- अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक अम्बड़ जी को, राजप्रश्नीय में श्रमणोपासक परदेसी राजा ने अपने धर्मोपदेशक धर्माचार्य केशीकुमार श्रमण को संथारे के पूर्व स्तुतिपूर्वक वंदन किया है। जितशत्रु राजा और सुबुद्धि प्रधान का कथानक ज्ञातासूत्रकथा के बारहवें अध्ययन में शिक्षा दे रहा है-

''मिच्छत्तमोहियमणा पावपसत्तावि पाणिणो विगुणा।
फरिहोदगं व गुणिणो, हवंति वरगुरुपसायाओ।।

अर्थात्- गंदे पानी के नाले का कुत्सित जल सुबुद्धि प्रधान के प्रयोग से स्वच्छ, सुपाच्य, सुगंधित, प्रशंसनीय बन गया, वैसे ही श्रेष्ठ गुरु की कृपा से मिथ्यात्व से मोहित मन वाला, पाप प्रसक्त, गुणहीन प्राणी भी गुणी बन जाता है, अर्थात् सम्यक्त्वी बन जाता है। इसके अनेकानेक उदाहरण भरे पड़े हैं। ऐसा कृपालु गुरु एक ही हो सकता है। श्रेणिक राजा के लिए अनाथी भी ऐसे ही गुरु हैं। गुण पर दृष्टि की अपेक्षा सारे साधु गुरु कह दिये गये, वहीं विशेष उपकार की अपेक्षा, साधना के दिशा-दर्शन की अपेक्षा एक ही गुरु हो सकता है। प्रायश्चित्त, आलोचना, अध्ययन-क्रम, विचरण-विहार, चातुर्मास-निर्णय, स्वयं के व्यक्तित्व-विकास एवं साधना में आगे बढ़ने के लिए एक गुरु का होना आवश्यक है। तीर्थंकर भगवान की विद्यमानता में अलग-अलग गण, अलग-अलग गणधर किस बात के प्रतीक हैं? गणधर गौतम के अन्तगड के दृष्टान्त गणधर सुधर्मा के अन्तगड में होने अनिवार्य नहीं। गणधर अग्निभूति के विपाकसूत्र के दृष्टान्त गणधर वायुभूति जी के समान होना अनिवार्य नहीं- इनके पाँच-पाँच सौ शिष्य अपने-अपने गुरु की वाचना से ही स्वाध्याय करते थे। अब कोई श्रावक किसी गणधर की वाचना को अन्तगड से या विपाकसूत्र से उन्हीं के मुखारविन्द से सुनकर, उन्हें गुरु मानकर उनका अनुसरण करता है- तो क्या उसके वाचनाचार्य रूपी गुरु एक नहीं होंगे? इसी अपेक्षा गुरु भगवन्त फरमाते थे, संघनायक आज भी फरमाते हैं- 'गुरु एक-सेवा अनेक'।

दौर्भाग्य से श्रमण आज बँटते जा रहें हैं, और इस बँटवारे में हमें दूसरे की बातें गलत ही नज़र आती हैं। जिनशासन में नय की महिमा है, अपेक्षा की महिमा है। उदारता, सरलता के धनी पूज्य हस्तीमल जी म.सा. ने अपने जीवन में एक-एक परम्परा को सहकार दिया, अपने समर्पित श्रावकों को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने समान सभी महापुरुषों की सेवा में तत्परता के लिये सदा प्रेरित किया, हमें उसी रास्ते चलना है। शिथिलता को, एकल विहार को, अनाचार को प्रोत्साहन देना कभी भी निर्जराकारी सेवा में नहीं आ सकता। आत्महित के साथ ही सुख का चिन्तन करने वाला इन्द्र भी भवी, शुक्ल पक्षी, सम्यग्दृष्टि, परीत, चरम जिनेन्द्र भगवान द्वारा बतलाया जाता है। उस उदारवादी दृष्टिकोण से ही आत्मा का हित सधने वाला है।

हमें किसी परम्परा में दोष नहीं बखानने हैं। गलती से अपने को बचाना ही है। सारे साधुओं को गुरु की बात कह एक गुरु को सिद्धान्त विरोधी कहना और बात है, पर सिद्धान्त के अनुरूप क्या वे अपनी परम्परा के मान्य गुरुओं के अतिरिक्त ठहरने का स्थान देने, भिक्षा बहराने को भी तत्पर रहते हैं? वहाँ हमें तो गुरु भगवंतों के सिद्धान्त पर ही चलना है। सामायिक, दया, पौषध, प्रतिक्रमण अपने गुरु की धारणा से कर प्रवचन, भिक्षा, सेवा से समिति-गुप्ति, आराधक प्रत्येक पंच महाव्रत धारी की सेवा करनी है।

'भंते' बोलते समय आपके मन में गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति तो हो ही, मन में प्रमोद का भाव भी हो।

आचार्यश्री के दर्शन आपकी भक्ति जगाने वाले हैं। सुदर्शन सेठ के माता-पिता कह रहे हैं- भगवान आए हैं तो क्या, तू वहाँ मत जा, भगवान तो घट-घट की जानते हैं, तेरा वन्दन यहीं से स्वीकार कर लेंगे। माता-पिता प्राणों के संकट का वास्ता देकर रोकना चाहते हैं, पर सुदर्शन कहता है-

घर से जो वन्दू तो देखूँ कैसे तुझको।
मुगदरपाणी से डर नहीं मुझको॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org